अघोरेश्वर निनाद

शुक्रवार ३० अक्टूबर २०२६ १

अघोरवाणी

उस भगवती को जानने के लिये, सुनने के लिये, समझने के लिये हम लोगों के पास वह स्थिरता नहीं है जिस स्थिरता में वह प्राप्त किया जाता है।

–पीठाधीश्वर बाबा सिद्धार्थ गौतम राम जी



अघोरेश्वर निनाद

अघोरान्नाऽपरो मन्त्रो नास्ति तत्वम् गुरौः परम्।

R.N.I.UPHIN-2000/3008 Postal No-G-2/VSI (E)-16/2024-26

युग-उद्धारक मुनि विज्ञानी। बाबा गौतम औघड़दानी।।



वर्ष-२६, अंक २०, वाराणसी | शुक्रवार ३० अक्टूबर २०२६ | सहयोग राशि ४.२५

अपने पर दया करना ही सर्व पर दया है, वही गुरुजन की सेवा और सज्जन का सम्मान है

अघोरेश्वर महाप्रभु बाबा भगवान राम जी का आशीर्वचन

धर्म बंधुओं एवं माताओं!

सायंकालीन गोष्ठी में मन्द मुस्कान बिखेरते हुए श्रीगुरुदेव ने कहा, गुरुजन स्वन तथा अपने साथ हमारा कैसा व्यवहार हो, यह विषय हम इसीलिये रखे कि आयु की भी रोचकता बढ़े और आप भी समझें। बहुत लोगों के मुख से होने से आप अधिक समझेंगे। एक ही व्यक्ति के मूखसे सुनने पर कम समझ में आता है। आप समझते हैं गुरु का जन कौन हो सकता है? उनके शिष्यगण ही। उनके विचारों को जो उद्योग करके पालन करता है। यह नहीं कि सिर्फ पालन ही करता है। आप कह दिये कि एक लोटा पानी लाने के लिये। उन्होंने आर्डर दे दिये फलाने के लिये। उसने भी आर्डर दे दिया और वह पानी आ गया। तो आप समझें हम उस देवता को या उस गुरु को पालन तो किये पर वह पालन का तरीका नहीं है। उसके साथ–साथ हमारा क्या शिष्टाचार हो? हम भी हुक्म देते रहे, ऐसा नहीं। या तो सुनबे ना करे उनकी बातों को और यदि सुने तो उद्योग के साथ करे।

उनके जन जो हैं, उनके बड़े प्रिय हैं। उनके जन का प्यार उनका ही प्यार है। उनके जन के साथ आप विरोध करेंगे तो आप सोचिये जिसके खातिर वो हुए हैं, उसके दिमाग में, मस्तिष्क में कितनी ठेस लग सकती है। इसीलिये राम से अधिक राम कर दासा। राम से भी अधिक राम के दास होते हैं।

जहाँ तक सज्जन का प्रश्न है, कोई भी सज्जन आपकी प्रतीक्षा में नहीं रहता कि आप हमारा सम्मान करिये। आप हमारा आदर करिये और सुश्रुषा करिये। आपके दण्डवत् करने से पहले वह सर झुकाता है, प्रणाम करता है। आपके प्रणाम करने से पहले वह प्रणयम होता है। बहुत से ऐसे रहते है मुँह फुलाये। उनको सलाम करिये, प्रणाम करिये तो उधर मुँह लौटा लेते हैं गुस्सा में आकर, मानवता तो है नहीं उनमें। बहुत से ऐसे हैं जो कि आप अभी नौना ही चाहते हैं तब तक वो झुक जाते हैं। तो यह निश्चय है कि यदि हम किसी को आदर देंगे तो हम बआदर होंगे। देखिये ये मुसलमान लोग हैं, ये अपने कुरान और मुहम्मद को कितना आदर करते हैं, आज ये लोग दुनिया में बआदर है। छाये हुए हैं सब लोग। लड़ झगड़ भी रहे हैं फिर राय भी होता रहता है।

तो अपने आचार्य के दिये हुए वस्तु को, बताये हुए वस्तु को उद्योग के साथ आदर देंगे, करेंगे, अपनायेंगे। आप भी इस देश में आदर के पात्र होंगे। और आपका आदर भी होगा क्योंकि जो बड़ा है आचार्य हैं जो सज्जन है वो अपना कुछ देता ही है। हम ऐसे हैं नागवार व्यक्ति कि उसके दिये हुए सामान का रखने योग्य पात्र नहीं हो पाते। हम यदि पात्र हो जायेंगे तो वह उसकी जो देन हैं, देता फिरता है, वो स्वतः हमको अपने आप उपलब्ध होगा। हमें पात्र बनने की आवश्यकता है।

हमारे साथ क्या कमियाँ हैं? किन–किन बातों की हमारे में कमियाँ हैं, यह आप खुद समझ जाइये। हम अपने को कितना धोखाधड़ी से रखा हूँ? कितना अपने साथ धोखा देता हूँ कि जानते हुए फिर भी उधर कूदता हूँ। तो अपने पर जो दया करता है, वही दया सब पर हो सकता है। जब वह अपने पर दया न करियेगा, किसी पर भी दया नहीं कर सकते। हम जो अपने दम्भी बन जाता हूँ, कभी दम्भ रचता हूँ, कभी मुँह फुलाता हूँ, कभी चेले आते हैं तो गोड़ धराता हूँ। कभी कोई कुछ पूछता है, बाबा जी, कहाँ हैं? तो बताता भी नहीं हूँ। कभी फलाहार करने लगता हूँ। कभी गंगा के किनारे यात्री देख लूँ तो आँख बन्द कर माला फेरने लगूँ। इस तरह दम्भ युक्त जो अपना आचरण है, यह अपने लिये घातक सिद्ध होगा, दुःखद सिद्ध होगा।

हम चिल्ला रहा हूँ कि मुझे हुक्का चाहिये। मेरा मित्र यही खड़ा है। मुँह फेर कर उधर चला गया। कहाँ आग सुलगाने जाऊँ? थोड़े देर बाद आकर बड़ा साष्टांग प्रणाम किया और प्रार्थना किया आपके समान दूसरा कोई नहीं, तो यह क्या हो सकता है, दम्भ ही तो हो सकता है। इस तरह का हमारे में जो दम्भ लगा है, उस दम्भ से हम दुःखी है, हम अपने को धोखा में रखें हैं तो अपने पर दया करना ही सर्व पर दया है। वही गुरुजन की सेवा हो सकता है। वही सज्जन का सम्मान का पात्र हो सकता है। अपने से प्रयोजन आप समझते ही होंगे।

इन्द्रिय द्वारा झरोखा नाना।।
जहं तहं सूर कीन्ह स्याना।।
आवत देखहिं विषय बयारी।।
सो तेहि देत कपाट उघारी।।

हम लोगों की सभी इन्द्रियाँ हैं, एक एक देवताओं से सम्बन्धित हैं। जो वे बड़ा ही लोभी हैं, लालची हैं इच्छुक हैं। इनके में बड़ा ही कामनायें हैं। इतना कामना है कि सैकड़ों रोग

शेष पृष्ठ-4 पर

सम्पादकीय

अघोर-पथ की साधना

यह सर्वविदित है कि अघोर-मत की साधना सभी पंथों, सम्प्रदायों, मतों, पद्धतियों से सर्वथा अलग-थलग है। यह सबके निचोड़ के रूप में अपने प्रवाह में आदि अनादि से प्रवाहित है, जिसमें सभी मत-मतांतर, धर्म-संप्रदाय मिलकर एकाकार हो जाते हैं और यह एक परिपक्व अवस्था के सिद्ध-साधकों की एक गोपनीय लीला बन जाती है। वैदिक काल से आजतक अघोर की शृंखला चली आ रही है। जिसमें बड़े-से बड़े तपस्वी साधक गोता लगा चुके हैं। इस अवस्था के सृजक स्वयं भूतभावन भगवान भोले नाथ को कहा जाता है जिनके इस योग लीला में मुनि विश्वामित्र, राजा हरिश्चन्द्र, भैरवाचार्य से लेकर अभिनव गुप्त एवं कीनारामी संस्था के साधकों का प्रतिभाग रहा है। ऋग्वेद के कौशिक सूत्रों में रावण की स्तुति में कापालिक चन्द्रशेखर से विदित होता है कि औघड़ साधकों का समय, स्थिति एवं परिस्थिति के अनुसार सदा से बड़ा आदर-सम्मान समाज से मिलता आया है। भारत वर्ष के राज्य तन्त्र में भी राजा या प्रजा दोनों के द्वारा अघोर साधकों को बड़ी सहजता और श्रद्धा से सम्मान दिया जाता था।

कालान्तर में राजवंशों में इनके रूप का नाजायज लाभ उठाकर दूसरे राज्यों में गुप्तचरी हेतु नियुक्ति होने लगी और वो सफल भी रहे। यहां तक कि उत्तर भारत के अलावा दक्षिण भारत में भी इनका बड़ा सम्मान रहा है। समय-समय पर तंत्र विद्या से भी जोड़कर औघड़-पथ का दुरूपयोग किया जाने लगा जबकि यह पथ अत्यन्त पावन मनोहर एवं सर्वजन हिताय, सूर्य की रोशनी की भांति उष्मादाता, तथा शीतल जल की भांति शीतलता प्रदान करने वाला है। यद्यपि आज सच्चे औघड़ संतों साधकों पथ-प्रदर्शकों की संख्या सम्पूर्ण विश्व में नगण्य सी है, फिर भी सर्वजन हिताय हेतु ये पृथ्वी के किसी न किसी भाग पर अपनी आभा फैलाकर सम्पूर्ण विश्व को अपनी आभा से आलोकित करते है।

वर्तमान में हम अत्यन्त सौभाग्यशाली है कि ऐसे विरल, अद्भुत औघड़ संत का काशी में प्रकटीकरण की अनुभूति हम कर रहे हैं। 17वीं शताब्दी के प्रचण्ड संत शिरोमणि परमपूज्य बाबा कीनाराम एवं 20वीं शताब्दी में परमपूज्य अवधूत भगवान राम का नाम एवं यश न केवल भारत बल्कि विदेशों में भी मानव शान्ति हेतु प्रभावशाली बना रहा। इसी प्रकार वर्तमान समय में अघोरपीठ बाबा कीनाराम स्थल के 11वीं गद्दी पर विराजमान सरल संत अघोरेश्वर बाबा सिद्धार्थ गौतम राम जी की भी यश-कीर्ति पताका फहरा रही है।

भारतवर्ष के अधुनातन समय में आज जहां हर ओर मानव का मानव के प्रति हिंसा, अलगाव, जातिवाद, धर्मवाद, सम्प्रदायवाद, अथवा दलवाद के साथ कटुता का भाव घर कर रहा है, ऐसे में बिना भेदभाव, समवर्तिता एवं समभाव के पलड़ों पर मानव का यहां समान रूप से स्वागत हो रहा है। मुख्यतः इस्लाम, ईसायियत, हिन्दू, सिख, बौद्ध, जैन सभी के सदस्यों का वाराणसी के केदार खण्ड में अवस्थित क्रीं-कुण्ड पर आना तथा भारतवर्ष के अन्य प्रदेशों में फैली शाखाओं में इसी प्रकार की समदर्शिता एवं समवर्तिता का भाव परिलक्षित हो रहा है। किसी भी उम्र, लिंग, जाति, वर्ग के मानव को समान रूप से शांति एवं स्थिरता की मनोवांछित फल की प्राप्ति होती है। जिससे वे सहसा इस स्थान से जुड़कर अविस्मरणीय झांकी पाकर निहाल हो जाते हैं। क्रीं-कुण्ड का जल एवं बाबा कीनाराम स्थल के अखण्ड धुनि की भस्मि उन्हें ऐसी चमत्कारिक परिवर्तन में चलायमान कर देती है, जिससे वे मन ही मन बाबा कीनाराम स्थल के प्रभावोत्पादक स्थिति को पाकर धन्य-धन्य हो जाते हैं।

C-अघोराचार्य बाबा कीनाराम अघोर शोध एवं सेवा संस्थान् के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक **अरुण कुमार सिंह** द्वारा महादेव प्रेस, बी.3/335, रविन्द्रपुरी कॉलोनी, भेलूपुर, वाराणसी (उ0प्र0) से मुद्रित एवं प्रकाशित।
सम्पादक : चन्द्र नाथ ओझा
ग्राफिक्स : नित्यानन्द उपाध्याय
☎ 9452713030, 9794487878
e-mail–Neenad@aghorpeeth.org
www.aghorpeeth.org

आत्मा की उपासना

पृ.3 का शेष

शुद्ध-बुद्ध आत्मा मानने वाले अपने सद्भाव को स्थिर रखने वाले ही जीवन के सफल यात्री माने जाते हैं। वे हंस की भांति नीर-क्षीर विवेक रखते हुए संसार के इस मान सरोवर से मोती चुग लेने में समर्थ होते हैं। क्योंकि उन्होंने अपने आत्माराम को मालिक मानकर सर्वथा समर्थ बना लिया है। किसी प्रबुद्ध व्यक्ति का कथन है कि मुझे ऐसे भेड़ों की सेना पर गर्व होता है जिसका नेतृत्व शेर के हाथ हो परन्तु ऐसे शेरों की सेना पर रोना आता है जिसका नेतृत्व एक भेड़ कर रहा हो। यानी यदि प्रत्येक भेड़ बुद्धि को शेर आत्मा के गुण, धर्म से युक्त कर दिया जाय यानी उसकी आत्मा मानव रूप में जागृत हो, कमाल करती रहे तो वह वास्तव में थोथे तड़क भड़क को दबाते हुए वास्तविक सुख का अधिकारी होता है। कहने का तात्पर्य है कि जिस व्यक्ति ने अपने आत्माराम को जागृत कर लिया है उसने जीवन के शाश्वत सत्य की ओर गमन कर लिया है। अभिमान अहंकार से युक्त होना बेलगाम मन का ही लक्षण है। जो आत्मा को पददलित करता रहता है। आत्मा से स्वाभिमान प्रकट होता है जबकि शरीर से अभिमान होता है। आत्म स्वाभिमानी व्यक्ति नैतिकता का आश्रय लेते हुए पतन से बचा रहता है। वह श्रेष्ठता के मार्ग पर अग्रसर होता जाता है। जबकि अभिमानी, अहंकारी दुर्गुणों से युक्त होकर निकृष्टता को प्राप्त होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार से यह प्रकट होता है कि वह देह बुद्धि का पोषक है या आत्म बुद्धि से अनुशासित। आत्म बुद्धि वाले व्यक्ति को दूसरे मनुष्य की पीड़ा से पीड़ा उसके सुख में सुख का अनुभव होता है। दूसरे के पांव से कांटा निकालने में उसे आनन्द आता है। जबकि एक देह बुद्धि से जकड़ा व्यक्ति अपनी स्वार्थ सिद्धि, व्यक्तिगत हित के लिये सिद्धान्तों, नैतिकता को तिलांजलि देकर अपने को अपमानित कर लेता है। गोस्वामी जी के शब्दों में- **''परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहीं अधिमाई।।** यानि पर पीड़ा देना, पर दोष देखना तथा अपने को निर्दोष सिद्ध करना देह बुद्धि की ही पसंद होती है। आत्म बुद्धि का व्यक्ति मुसीबत में पड़े हुए अपने परिजनों, पड़ोसियों का साथ नहीं छोड़ता। इसके विपरीत स्वार्थी व्यक्ति अपने छोटे-छोटे स्वार्थ पूर्ति हेतु झगड़ा, झंझट करते व दूसरे को अपमानित करने की हिमाकत करते रहते हैं।

अत: जीवन के घटाटोप से निकलने का एकमात्र मार्ग गुरुवाणी का अवलम्बन लेना ही विकल्प है। यदि हमारी श्रद्धा, हमारा विश्वास, गुरुवचन के प्रति अत्यन्त निष्ठावान है। कटिबद्ध है तो निश्चित रूप से संसार के इस अनिश्चितता भरे दुर्गम मार्ग को हम सहज में ही पार कर लेंगे तथा इस लोक को सुधारने के पश्चात् परलोक भी अपने आप सुधर जायेगा। यदि एक बार हम अपने आत्मबोध को प्राप्त कर लें तो लोकलुभावनी निकृष्ट कर्मों में हमारी लिप्तता बिल्कुल ही नहीं होगी। यानि यदगत्वा न निवर्तते, तद्धाम परमं मम'' यानि सभी संशयों, ऊहापोह, पापादि कारणों से निवृत्ति का एकमात्र मार्ग अघोर पथ गमन ही है। जहाँ पहुँचने पर उल्टे सीधे पांव नहीं पड़ते। बल्कि आने वाला मार्ग अत्यन्त सरल, सपाट एवं स्पष्ट हो जाता है। काम, क्रोध, मोह, मद आदि विकारों से दूर-दूर तक कोई लिप्सा या वास्ता नहीं रह जाता। बल्कि सरल सीधा सादा जीवन जीने में आत्म दर्शन का दर्शन होता है। इसीलिये अघोर पथ में अत्यधिक प्रवचन, पूजा पाठ, जप-तप के स्थान पर रहनी यानि जीवन के कार्य-कलापों, व्यवहार को ठीक रखने पर जोर दिया जाता है। जिसे मानव निर्माण कहा जाता है। आत्म ज्ञानी मनुष्य निश्चित रूप से परहित का ध्यान रखने में समर्थ रहता है एवं वह माता-पिता गुरु द्वारा प्राप्त सद्विचार, सद्व्यवहार, सौहार्द को अधिकाधिक वितरित करने में आनन्द का अनुभव करता है। यही वास्तव में आत्म बोध, आत्म कल्याण का सीधा सादा लक्षण है। अघोर दर्शन का यही प्रथम चरण भी है। जिससे हम लगातार ऋजु मार्ग पर चलने के अभ्यासी बने रहते हैं तथा पूजा पाठ की औपचारिकता को अत्यधिक महत्व नहीं देते। क्योंकि पूजा पाठ कर्मकाण्ड आदि का सारतत्त्व यही है कि हम सहृदय परोपकारी बनें। वास्तव में यही अघोर मार्ग कहलाता है।

॥ शुभ दीपावली 2026॥

सुधी पाठकों, श्रद्धालुओं, भक्तों एवं अघोर-पथ के अनुयायियों को दीप-पर्व 'दीपावली' पर 'अघोरेश्वर-निनाद' की ओर से आप और आपके परिवार को उज्ज्वल भविष्य की मंगलकामना करता हूँ।

अत: 8 नवम्बर 2026, रविवार को दीपोत्सव के इस प्रकाश-पर्व पर आप सभी का अभिनन्दन है। - सम्पादक

ॐ

आत्मा की उपासना

अघोर उपासना, साधना, आराधना के अन्तर्गत आत्मपरिष्कार, आत्मविकास एवं आत्म निर्माण किया जाता है। जिससे हम स्वयं अपना तथा समाज का भी उत्थान करते हैं। अघोर पथ का एक साधारण सा साधक भी उस भौंरे की भाँति होता है जो खिले हुए प्रजातियों के पुष्पों से शहद एकत्र कर अपने परिजनों, समाज एवं मानव सेवा हेतु अर्पित करता रहता है। परमपूज्य बड़े सरकार अघोराचार्य भगवान अवधूत राम जी के द्वारा अपने प्रवचन की सम्पन्नता के पश्चात् प्राय: स्वात्माराम, आत्माराम को मंत्रवत श्रद्धालुओं, श्रोताओं से समवेत् स्वर में हृदय से उच्चारित कराया जाता था। जिससे प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर बैठी सर्वेश्वरी की उपासना हो जाती थी। जैसा कि हम भलीभांति अवगत है अघोर पथ, हर मजहब, हर धर्म, हर पंथ से परे अद्वितीय है। अघोर साधक हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी, बौद्ध, जैन अथवा किसी भी एक खास वर्ग से होकर भी वह एक वर्ग से ताल्लुक नहीं रखता। बल्कि वह सभी के लिए समवर्तिता का भाव रखता है। यानि उसे प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में बैठी भगवती सर्वेश्वरी की ही पहचान रहती है। तभी तो सबसे अधिक आत्मा राम की आराधना पर जोर दिया जाता है। यानी आत्म बुद्धि को ही प्रश्रय देकर निर्णय लेने की परिपाटी है। आत्मबुद्धि से लिया गया निर्णय निर्विवाद रूप से आत्म कल्याण का सोपान होता है। अघोर गायत्री मंत्र "अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोर घोर तरेभ्य:। सर्वेभ्य: सर्व सर्वेभ्यो: नमस्तेऽस्तु रुद्र रूपेभ्य:।। तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्र: प्रचोदयात् में शब्द प्रचोदयात् का 'द' अक्षर समस्त मानव को आत्म ज्ञान एवं आत्मोदय के आलोक में आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है। जिस व्यक्ति की आत्मा जितनी बलिष्ठ एवं विशेष होगी। उस व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व उतना ही निखरा एवं समाज हित में होगा। अपने को मात्र शरीर मान लेना या शरीर के भोगों की तरफ लिप्तता होना आत्मा राम की आवाज को दबाकर मन के वश में होना सिद्ध करता है। जब शरीर को आत्मा का एक अस्थायी आलय मान कर हम अपने जीवन रथ पर सवार होकर सावधानी से गमन करते हैं तो हमें अमूल्य आनन्द की अनुभूति होती है। मृत्यु का भय तो सता ही नहीं सकता है। यशस्वी रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में आत्मा एवं शरीर के सम्बन्धों का निम्नवत् चित्रण किया गया है।

निर्भय स्वागत करो मृत्यु का,
मृत्यु है एक विश्राम स्थल,
जीव जहाँ से फिर चलता है
धारण कर नव जीवन सम्बल,
मृत्यु एक सरिता है जिसमें
श्रम से कातर जीव नहाकर
फिर नूतन धारण करता है
काया रूपी वस्त्र बहाकर।

उपर्युक्त पंक्तियों में शरीर को, काया को, आत्मा राम का वस्त्र बनाया गया है तथा यह आत्मा ही है जो कि मुख्य है न कि शरीर। आत्मा को ही मुख्य मानकर यह कहते हैं कि यह मेरा शरीर है। यह अवश्य है कि शरीर के बिना आत्मा के आश्रय की अनुभूति मनुष्य को नहीं होती न तो उसकी देह बुद्धि ही कार्य करती है। अत: पवित्र आत्मा जो सभी जीवों में अजर, अमर एक सी होती है। उसके समस्त व्यक्तित्व का कर्ता धर्ता है। मन बुद्धि यानी मनसा, वाचा, कर्मणा से जब कोई ऐसा कार्य हो जाता है जिससे कि हमारी आत्मा शर्मिन्दा, लज्जा एवं संकोच का अनुभव करें तो यह सिद्ध करता है कि वह कार्य विवेक के अनुरूप नहीं था। आत्मा के पसंद के विपरीत किसी प्रकार के विकार से आवेशित होकर जब हम कोई कार्य कर बैठते हैं तो वही हमारे दु:ख का कारण भी होता है। जिसके निरन्तरता से व्यक्ति अपने ही बुने जाल में फंसकर अपनी इहलीला समाप्त कर बैठता है तथा लोक-परलोक दोनों बिगाड़ लेता है। अस्तु, प्रत्येक व्यक्ति जो ईश्वर का अंश है तथा उसके अन्दर माँ सर्वेश्वरी का वास है, को जब मन पसंद विशुद्ध अनुशासन सहित कार्य प्रणाली का अभाव महसूस होता है। तो वही व्यक्ति दु:ख के भागी होते हैं। कहा गया है कि अघोर पथ के अनुयायी अपने आत्म बुद्धि से कार्य लेता है न कि देह बुद्धि से। सांसारिकता के प्रपंच में पड़ने से वह बचा रहता है। जीव का शरीर मृत्युपरान्त सड़ने गलने लगता है जबकि आत्मा अपने बृहद् अंश में विलीन हो जाती है। यह भी निर्विवाद रूप से सत्य है कि व्यक्ति वास्तव में अपने आत्मा से ही पहचाना जाता है न कि नाम, जाति, वर्ण, रंग, रूप से। जाति, वर्ण, रंग, रूप तो सांसारिक, सामाजिक व्यवस्था का एक अंश मात्र है। जबकि आत्मा असीमित आनन्द का केन्द्र बिन्दु है। जिससे हम वास्तव में अनभिज्ञ बनते रहते है। कबीर दास जी के शब्दों में कहा गया है —

कस्तूरी कुंडली बसै, मृग ढूँढे वन माहिं।
ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखें नाहिं।।

यानी सांसारिकता के विकाररूपी लबादे से हम ऐसे जकड़े हुए रहते हैं कि यथार्थ आत्म बोध के अनुभव से वंचित रह जाते हैं। इसी उहापोह में जीवन अनेक व्यथाओं, अशान्ति का शिकार हो जाता है। विडम्बना है कि जीवन के अधिकांश भाग का दुरुपयोग हम अपने को मात्र शरीर मानकर ही कर लेते हैं। हानि-लाभ, मान-अपमान, जीवन-मरण सभी को शरीर से ही जोड़कर हम ऐसे देखते हैं मानो इससे पृथक कुछ भी न हो एवं स्वयं को मात्र शरीर मान लेना वैसा ही है जैसा कि- शहद से भरे बर्तन को मात्र बर्तन ही मान लेना।

अत: हम मनुष्यों का यह दायित्व है कि आत्मा और शरीर के पृथकता से हम अवगत हो। स्वादिष्टता, जिह्वा लोलुपता, इन्द्रियों की चंचलता, भोग विलास आदि की इच्छा शारीरिक सुख के दायरे में आती है तथा यह हमारे शरीर की दसों इन्द्रियों तथा एक मन यानी कुल ११ चाकरों द्वारा भोग किया जाता है। मन की इच्छा में उच्च पदाकांक्षा, अधिकाधिक यश, वैभव, सामाजिक प्रतिष्ठा आदि सम्मिलित है। इन्हीं की प्राप्ति में मनुष्य का लगभग सारा जीवन समाप्त हो जाता है। साथ ही, ज्यों ज्यों इन सब चाहों की आपूर्ति की जाती है त्यों त्यों रिक्तता का गर्जन बढ़ता जाता है। तथा आहार, निद्रा, भय, मैथुन के कार्यक्रम में फंसकर मानव अपने दुर्लभ जीवन का लाभ नहीं ले पाता।

जीवन की वास्तविक समृद्धि, वास्तविक सुख आत्मानन्द के अनुरूप कार्य करने में होती है। पापाचार, व्यभिचार, बड़ी-बड़ी चोरियाँ, परधन हड़प करना, तस्करी जैसी बुराईयों को आत्मा कभी स्वीकार नहीं करती तभी उसे आँख बचाकर चोरी चोरी करना पड़ता है। कर्ता के स्वात्मा राम के विरोध को दबाने के लिए ही ऐसे व्यक्तियों को दुर्व्यसनों, नशा आदी का आदि होना अपरिहार्य बन जाता है। जिससे वे अपने अन्दर बैठी देवात्मा के आवाज को अनसुना कर देते हैं। इससे सिद्ध है कि प्रत्येक मानव की आत्मा की एक ही प्रवृत्ति है कि वह आलस्य, अनीति, दुराचार, वर्जनाओं से बची रहे। परन्तु बेलगाम मन के प्रभावी होने के कारण प्राकृतिक रूप से सत्पथी, परमार्थी, पुण्यात्मा के कदमों को रोककर इन्द्रियाँ अपने अनुरूप कार्य करा लेती हैं। जो आत्माराम को सर्वथा नापसंद होती है। आत्मा की आवाज को सुनकर आत्म बुद्धि से निर्णय लेने वाले मनुष्य सदा सर्वदा अभय, निर्भीक मस्त निर्द्वन्द्व जीवन बिताते हैं। जबकि झूठे सुख की ललक में नाना प्रकार के अशुभ साधनों का सहारा लेकर भौतिक सुख-समृद्धि बटोरने वाले अन्तत: दु:ख झेलते है एवं आत्मधिक्कार को प्राप्त होते है। यह भी विचित्र ही है कि शरीर में आत्मा का निवास होते हुए भी शरीर के घोड़ो दस इन्द्रियों एवं मन के विपरीत आत्माराम की प्रवृत्ति एकदम एक दूसरे से अलग थलग है। आत्मा यदि पुरुषार्थ, परोपकारिता, परिश्रम की कमाई करते हुए पुण्य मार्ग पर चलना पसंद करती है वही शरीर अपने स्वार्थ पूर्ति हेतु किसी भी स्तर पर जाकर अपनी तृष्णा, अतृप्त प्यास, इच्छा भोगों को येन-केन-प्रकारेण प्राप्त करने में स्थायी रूप से पाप अशान्ति, भय, दु:ख से दो चार हो जाता है। इसीलिये समस्त धर्मों के अगुआ सच्चे संत समाज सेवी, त्याग-तपस्या से जीवन बिताते हुए पुण्य अर्जन की ओर अग्रसर करते रहते हैं। पाप कर्म का उनका दृष्टिकोण ही नहीं रहता। न तो ऐसे कर्मों को वे पसंद ही करते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि आत्मानुरागी व्यक्ति हाथ पर हाथ धरे घर बैठा रहे या भाग्यवादी बना रहे।

नाना प्रकार के विकारों से मुक्त होने के लिए हमारा शरीर भी स्वच्छ एवं बलिष्ठ होना चाहिये। जैसा कि बताया गया है- **"शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्"**

यानि शरीर धारण करने के उपरान्त ही आत्माराम की इच्छानुसार क्रियाशील बनकर अपने को धन्य बनाया जा सकता है। ऐसे साधकों को स्वयं के जीवन लक्ष्य प्राप्त करने में कठिनाई नहीं होती। वे परोपकारिता एवं उदारता से परिपूर्ण होते हैं। जबकि इन्द्रिय भोगों को सर्वस्व समझने वाला भोग, सम्पदा, ऐश्वर्य सामाजिक प्रतिष्ठा की चाह में अपने जीवन के अमूल्य क्षणों को विनष्ट कर आत्मा से दिवालिया घोषित कर दिया जाता है और मृत्योपरान्त उसका परलोक बिगड़ ही जाता है।

अत: यदि हम अघोर पथ के अनुकूल हों तो हमें अपने को शरीर भाव से ऊपर उठाना होगा। आत्मज्ञानी बनना होगा। छोटी-मोटी घटनाओं से विचलित न होते हुए हानि-लाभ, जन्म-मरण, यश-अपयश को परिवर्तनशील संसार की परिहार्यता माना जाना श्रेयस्कर होता है। जबकि देह मान को सर्वस्व मान लेने वाला व्यक्ति के जीवन के झंझावतों से विचलित होकर बुरी तरह प्रभावित हो जाते हैं तथा कभी-कभी आत्महत्या तक को उतारू हो जाते हैं।

अत: अपने जीवन को साकार करने के लिये, धन्य बनाने के लिये आत्म भाव में जागृत रहने के लिये अभ्यास किया जाना अत्यावश्यक है। अपने को निर्विकार

शेष पृ.2 पर

अपने पर दया करना ही सर्व पर दय4ा है, वही गुरुजन की सेवा और सज्जन का सम्मान है

प्रथम पृ0 का शेष

उत्पन्न होता है और उसी में विलीन हो जाता है। किसी का पूर्ति हो जाता है किसी का नहीं पूरा होता। वह विस्फोट बना रहता है। हमलोगों के यहाँ, देखते होंगे स्तुति नहीं किया जाता। प्रणव कर लेते हैं। माँ कहते हैं सीधे से और उसके बीज मंत्रों का उच्चारण करते हैं क्योंकि कैसे कहे न मंत्रं न यत्रं न तदपि न जानेत स्तुतिहम। अभी मंत्र जप रहे हैं। अभी यंत्र रखते हैं। पर तुरन्त स्तुति में प्रत्यक्ष झूठ बोले उनके सामने न यंत्रम् न मंत्रम् तदपि न जानेत स्तुतिहम्। तो इस प्रत्यक्ष झूठ से थोड़ा बचना भी चाहिये। क्योंकि कि हम जानते हैं। वह ईश्वर ऐसा है। उसको शब्दों में वाग्जाल में नहीं घेरा जा सकता। वह बड़ा चालक है। यह हम जो प्रार्थना करते हैं तो एक तरह का स्पष्ट झूठ ही तो बोलते हैं उसके सामने। उससे हमने कभी कहा था कि तुम निरंकार हो फिर कहते हैं शान्ताकारम्, भुजगशयनम् पद्मनाभम् सुरेशम्। तुम ऐसा हो। इसका क्या मतलब हो सकता है। जिस व्यक्ति को एक बार कह चुका हूँ कि तुम निरंकार हो, तुम्हारी आकार, आकृति नहीं है, तुम ब्रह्म हो तुम अलख हो, तुम्हें लख नहीं जायेगा। तुम निरंजन हो तुम कोई जन नहीं हो तो जिसको हम एक बार इसी वाणी द्वारा सम्बोधित कर चुका हूँ फिर उसको उसी वाणी से ऐसा बात कर रहा हूँ। किसी को कभी कहें तू साधु है और फिर कहें कि तू चोर है। कितना बुरा फील होगा? तो हम लोग अपनी वाणियों से, मन, कर्म, वचन तीनों से उस इष्ट की आराधना नहीं करते। मन, कर्म, वचन से अपने पर भी दया नहीं करते। मान लेते हैं कि कर्म से हम अपने इन्द्रियों का कुछ निग्रह कर लेते हैं। अपने मन को समझा लेते हैं। वाणी द्वारा फिर वही हाल है। मन द्वारा वही हाल है।

विवाह की स्वतंत्रता

विवाह प्रेम–बंधन है। प्रेम में सहज आकर्षण है। इस अज्ञात आकर्षण को मान्यता देना ही विवाह है। राम और सीता के आदर्श विवाह में यह आकर्षण प्रारम्भ से ही प्रलक्षित होता है। कृष्ण के तो विवाह की सारी कहानी ही इस अज्ञात आकर्षण पर आधारित है। कृष्ण बड़ा अनोखा व्यक्ति था। प्रेम के सत्य का बड़ा मर्मभेदी था। प्रेम के रहस्य को जितनी गहराई तक उसने समझा और जिस साहस के साथ उसका निर्वाह किया, वह भारतीय इतिहास में अन्यत्र नहीं दिखाई देता। उसने अपनी बहन का अर्जुन के प्रति सहज आकर्षण देखा। कृष्ण के बड़े भईया बलराम राजा थे। वे इस विवाह सम्बन्ध के विरोधी थे। पर कृष्ण ने अपने भाई और परिवार के साथ धोखा किया, और अर्जुन के साथ उसे भागने में सहायता की।

राम और कृष्ण की दुहाई सभी देते हैं पर उनके आदर्शों को कौन मानता है। आज विवाह सहज प्रेम–बंधन के स्थान पर बनावटी बंधन हो चुका है। अनेक तरह के मेल मिलाये जाते हैं। जाति पाति का मेल मिलाया जाता है। धन दौलत, इज्जत आबरू गनना–मनना का मेल मिलाया जाता है पर क्या यह भी देखा जाता है कि वर वधू में स्वभाव की साम्यता है? आज भी हमारे समाज में वैदिक काल की देवियों तथा सावित्री, शकुन्तला आदि के आदर्श रखे जाते हैं। भारतीय नारी को उनसे प्रेरणा लेने की बात कही जाती है। पर क्या वह स्वतंत्रता नारी समुदाय को दी जाती है जो उन्हें प्राप्त थी। स्वतंत्रता के अभाव में भारतीय समाज का यह आधा अंग अपंग ही रहेगा। भारतीय नारी निष्क्रिय और निर्जीव ही रहेगी, नारी शक्ति की श्रोत है, स्वयं शक्ति है। पुरुष को भी शक्ति नारी ही देती है। नारी की शक्ति पाकर ही पुरुष शिवत्व प्राप्त करता है। नहीं तो उसकी शक्ति के अभाव में शिव भी शव के समान होता है। यदि हम इन बातों में विश्वास रखते हैं तो शक्ति की मर्यादा रखनी होगी। नारी को समाज में मर्यादित स्थान और स्वतंत्रता देनी होगी।

अघोर

अघोरेश्वर महाप्रभु बाबा भगवान रामजी का आशीर्वचन

मुड़िया साधुओं!

अघोर मत या अघोर साधना एक ऐसे लोगों का विचार स्पन्दन है जो मत-मतान्तरो से, पन्थो से, अनेक मार्गों से ऊपर उठा हुआ या कहिये कि परिपक्व सिद्धों की गोपनीय लीला है। वैदिक काल से लेकर आज तक अघोर साधकों की शृंखला चलती आ रही है। इसमें बड़े-बड़े महापुरुष गोता लगा चुके हैं और लगाते रहे है।

अभिनव गुप्त से लेकर कीनाराम एवं प्राचीन परम्पराओं और ऋग्वेद के कौशिक सूत्रों में रावण की स्तुति में कपालि, चन्द्रशेखर से यही विदित होता है कि औघड़ लोगों का, अघोर साधकों का इस देश में बड़ा आदर एवं सम्मान राजमहलों की तरफ से एवं प्रजाओं की तरफ से और हर प्रान्त के शासकों की तरफ से सदा रहा है।

ऐसा देखने में आता है कि एक शासन ने अपने गुप्तचर को औघड़ के वेष में, अभेघ उज्जैन के राजवंशों का गुप्तचरण करने को विदा किया। क्योंकि राजवंश इतना विश्वास, इतना सुहृदय और अपने को इतना नजदीक औघड़ लोगों को पाता था कि कोई बात उनसे छिपा नहीं रखता था। यही कारण है कि दूसरे राजवंशों ने इसका लाभ उठाया और भेद एक दूसरे जगह का औघड़ वेष धारण करके लेता रहा और कर्नाटक प्रदेश के तो प्राय: सभी भागों पर औघड़, अघोरों का पूरा प्रभाव रहा है और वहाँ के राजघरानों में पूज्य रहा है। औघड़ वहाँ के बहुत से सामाजिक, सांस्कृतिक स्थानों के संस्थापकों में से रहे हैं और साहित्यों के, जो कर्नाटक में है, उनके भी उद्गम स्थान रहे है।

हमारे उत्तर भारत के कई एक साधुओं को जो अपने को वैष्णवी या आचारी कहते रहे, अघोर क्रियाओं का अवलम्बन लेना पड़ा और वे अघोर साधना के कर्जदार हैं। इनमें तुलसीदास, भाष्करानन्द योगी और कबीर की साधनाओं पर इसकी झाकियाँ मिलती रही है, ऐसा उनके साहित्यों से विदित होता है।

बंगाल में भी वामाखेपा, तैलंगस्वामी, सर्वदानन्द ठाकुर तक अघोर या अघोर साधना से अपने आपको वंचित नहीं रख सके। इसको विस्तार से यदि बताना हो, तो एक अलग से ग्रन्थ हो सकता है।

सही माने में तो अघोर साधना किसी भी प्राणी को नहीं छोड़ी है, विशेषकर मनुष्य को सुबह शाम अवश्य ही अघोर दो मिनट के लिये आबोदस्त के समय होना ही पड़ता है। इस दृष्टि से हम शैशव काल में साधक चाहे वे वैष्णव हो, शैव हो या सन्यासी, वैरागी या किसी भी मत-मतान्तर के हों, परिपक्व अवस्था में अघोर या अघोर साधना से वंचित कदापि नहीं रह सकते क्योंकि शैशव काल में बनावटी का अवलम्बन तो अवश्य लेना पड़ता है। पर परिपक्व अवस्था में जनसमूह की परवाह किये बगैर अपने अन्तरंग अन्तराल की ओर साधनायें और साध्य, जो तृप्त करता है, उसे जब परिपक्व करता है तो वंचित कहाँ रहता है।

इस भाव से प्राय: शैशव में तरुणाई अंगड़ाई लेती रहती है पर परिपक्व काल से गुजरा हुआ व्यक्ति निश्चित अघोर, अघोर-साधना और घोर-घोर, अघोर में अपने आपको देखता है और अपने आप हो ही जाता है। आदि अघोर, अन्त अघोर, उदय, अघोर, अस्त-अघोर, मध्य अघोर, घोर-घोर सर्व अघोर।

इससे कोई मत, पंथ अपना आंचल पकड़ाये बगैर गुजर नहीं सकता। क्योंकि यहीं का रहस्य उनमें रहस्य होकर बना है, जहाँ तक मुझे आशा है।

अघोर सूत्र

☞ यह जो भगवती हैं, उसके कृत्यों को और उसकी पकड़ को समझने के लिये अपना बहुत–बहुत कुछ करना पड़ता है। कितने बार, कितने लोगों ने अपने को बलि दे चुका है, तदपि उसे नहीं पहचाना हैं, नहीं जाना है।

अघोरेश्वर महाप्रभु बाबा भगवान रामजी